मुफतलाल की डायरी • मुकरबंध

जगतराम एण्ड सन्स
मेन बाजार, गांधी नगर, दिल्ली-110031

© मुद्राराक्षस

प्रकाशक

जगतराम एण्ड संस
IX/221, मेन बाजार, गांधीनगर
दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण

1992

मूल्य

पचास रुपये

मुद्रक

अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MATHURADAS KI DIARY (Humour & Stire)
by Mudrarakshas
Price : Rs. 50.00

अनुक्रम

परनिंदा सुख उर्फ एरिस्ट्रोक्रेट झाड़ू	7
पुरस्कार प्रसंग	10
सावधान ! आगे जनवादी रेजीमेंट है	14
अध्यक्षता का आनन्द	19
अथ श्री दिल्ली पुलिस पुराणम्	23
काशी विश्वनाथ : शासकीय नियमावली	27
विधायक बिकाऊ हैं···!	32
आलोचना के खतरे	37
ऋणंकृत्वा चर्बी पिवेत	41
पड़ता सिद्धान्त	46
चुनाव चक्र और एकता	51
उत्तर प्रदेश का कीर्तिमान	55
व्यंग्यकार की मेख	59
गरीबी की रेखा के इधर और उधर	64
समीक्षा सुख	68
टेढ़ा उल्लू	72
बड़ा क्या है : सच्चा सुख या सत्ता सुख	77
हिन्दी की शुभचिन्तक	82
ब्लेड युग की साहित्यिक हरकतें	87
बड़े बनने का गुर !	91
भारत भवन से मथुरादास की अपील	96
कम्प्यूटर क्रान्ति	101
उपदेशक की जमीन	105

पड़ता सिद्धान्त

विद्वानों से मालूम हुआ कि भारत में कल्याणकारी, जनहितकारी, विकास और समृद्धि का स्रोत पूँजीवादी व्यवस्था का सिद्धान्त है 'पड़ता'। मथुरादास इसे शुरू में कुछ गलत समझे यानी वे नया जूता खरीद कर डिब्बा सुतली से लटकाये घर आए तो बीवी ने पूछा—कितने में पड़ा ?

अभी कोई दस बरस पहले यही जूता मथुरादास को सिर्फ पच्चीस रुपये में पड़ जाया करता था; पर अब वह पूरे डेढ़ सौ में पड़ा। इस 'पड़ने' में कष्ट थोड़ा बढ़ जाता है। तो मथुरादास पड़ता का मतलब यही समझ रहे थे। बल्कि इसका कुछ ऐसा अर्थ विस्तार हो चुका है कि वे आटा खरीदने जाते हैं तो भी उन्हें यही जानने का मन करता है कि ये जूते कितने में पड़े। घी तो उन्हें अब किसी पुलिस दरोगा के जूते से कम नहीं लगता।

मगर पूँजीवाद का आर्थिक सिद्धान्त यह नहीं है। उसमें पड़ता का मतलब कुछ और होता है। यह सद्ज्ञान प्राप्त होने के बाद और अर्थशास्त्र के इस महान् सिद्धान्त का अध्ययन करने के बाद मथुरादास ने संसार के सब सूत्रों का लाभार्थ पड़ता सिद्धान्त पर एक नवीनशास्त्र की रचना की है जो इस प्रकार है—अथ श्री पड़ता सिद्धान्त कौमुदी मथुरादासेन विरचिता···

अब चूँकि हमने इस शास्त्र का नाम 'पड़ता सिद्धान्त कौमुदी' रखा है इसलिए बदमाश लोगों को आगाह करता हूँ कि इसे नाटक वाली कौमुदी या कामेडी न समझ लें। हमने पीछे इसका नामकरण किया था—पड़ता-पुराण। मगर जैसा कि आप जानते हैं साहित्य में बड़ी धाँधली चल रही है। हमारे इरादे को भाँप मृणाल पाण्डे ने पटरंगपुरपुराण लिखकर साहित्यिक चौर्य कर डाला। अब आप ही बताइए, अगर उन्होंने पड़ता से ही पटरंग नहीं बनाया तो वे तहसील के नक्शे में बताएँ पटरंगपुर कहाँ है ? वह कहीं नहीं

है। खैर, अब मैंने खीझकर इसका नाम पड़ता सिद्धान्त कौमुदी कर दिया है।

अब हम इस सिद्धान्त की व्याख्या शुरू करते हैं।

पड़ता सिद्धान्त में पड़ता हर किसी को नहीं पड़ सकता। इसी महती सिद्धान्त का लाभ उठाने के लिए मनुष्य को कारखानों का स्वामी होना पड़ता है। उद्योग का स्वामी होने पर ही पड़ता सिद्धान्त लागू होगा, कंगले के लिए यह सिद्धान्त वैसे है जैसे बन्दर के हाथ में आईना। बन्दर आईने में झाँक तो सकता है पर अपनी हजामत नहीं बना सकता। तो कारखाने का स्वामी होकर जो माल वहाँ काम करने को नियुक्त लोगों से बनवाया जाता है उसकी लागत निकाली जानी चाहिए। यदि वह दो रुपया है तो उसे दो रुपये में ही नहीं बेचना चाहिए। इससे पड़ता नहीं पड़ेगा। घाटा होगा। लाभ न हो तो वह घाटा ही कहा जाएगा। पर्याप्त लाभ के लिए दो रुपये की वस्तु दो सौ रुपये में बेचनी चाहिए तभी अच्छा पड़ता पड़ेगा।

और अच्छा पड़ता पड़ने के लिए आधा उत्पादन कारखाने के अगले दरवाजे से निकालना चाहिए और आधा पीछे की सुरंग से। पड़ता की दर और ज्यादा बढ़ाने के लिए माल बहुत दिन तक अगले-पिछले दोनों द्वारों से निकलना बन्द कर देना चाहिए। तब विपत्ति में पड़े लोग दो रुपए की चीज दो सौ में नहीं चार सौ में भी इस तरह खरीदेंगे गोया मुफ्त हो।

पड़ता पड़ने में दुष्ट लोग कभी भी भारी अड़ंगा लगाते हैं। इससे सावधान रहना चाहिए। अड़ंगा लग ही जाय तो चतुराई पूर्वक उसे अपने लाभ में प्रयुक्त करना चाहिए।

दृष्टान्त : एक समय की बात है कि कांपिल्य नामक नगर में गधे, सूअर, गाय, कुत्तों और सियारों की चर्बी प्रचुर मात्रा में और बहुत सस्ते दामों पर बिकने आई। मूँगफली आदि पदार्थों के तेलों का दाम अधिक है ऐसा सोचकर कांपिल्य नामक नगर में वनस्पति व्यापारियों ने डिब्बों में चर्बी भर कर बेचनी शुरू की और इससे उन्हें पड़ता पड़ा।

धनिकों की समृद्धि में जलने वाले एक पाजी पत्रकार ने इस रहस्य का भण्डा फोड़ दिया। उसने जनता को यह बता दिया कि वनस्पति के नाम पर उन्हें चर्बी खानी पड़ रही है। इस सूचना से बहुत-से लोग घबरा गए और उन्होंने वनस्पति खरीदना कम कर दिया।

तब चतुर उद्योगपतियों ने शुद्ध सरसों के तेल का दाम तेरह रुपये से तीस रुपये कर दिया और सरसों के तेल से पर्याप्त धन कमा कर पड़ता पाया।

महँगे सरसों के तेल से भीगा जूता पड़ने पर तिलमिलाए हुए लोग दुबारा चर्बी की तरफ भागे। इस बार वनस्पति का दाम तीस रुपये हो गया। इस तरह पाजी पत्रकार की हरकत का चतुराई पूर्वक सामना करते हुए उद्योगपतियों ने अपना पड़ता पड़ा लिया।

चतुर व्यक्तियों को पड़ता का यह सिद्धान्त हर क्षेत्र में कुशलतापूर्वक अमल में लाना चाहिए।

कभी-कभी भोंदूजन जनसेवा के लिए निकलते हैं और सचमुच ही जनसेवा करने लगते हैं। उनका पड़ता कभी नहीं पड़ता। वे जीवन-भर पिन-पिनाते रहते हैं और हर तीसरे आदमी से समय बुरा होने की शिकायत करते हैं। जनसेवा में उतरते ही मनुष्य को किसी आयोग अथवा समिति का अध्यक्ष बन जाना चाहिए। इससे पड़ता खाना शुरू हो जाएगा। मगर सही अर्थों में जनसेवा के लिए निकल कर जीवन-भर हरिजनोत्थान समिति का अध्यक्ष बने रहने पर भी जीवन पड़ता नहीं खाएगा। इसके लिए विधानसभा या संसद की सदस्यता पाने का उद्यम करना होगा। लेकिन अच्छा पड़ता तो तब पड़ेगा जब मंत्री हो जाए। मन्त्री होने से आपका ही नहीं आपके परिवार का पड़ता पड़ने लगेगा। आपके चिरंजीव आपकी सहायता करते हुए उचित लाइसेंस का शुल्क निर्धारण और उनकी वसूली का काम करने में निपुण हो सकते हैं, पुत्रवधू तबादलों की उत्तम दरें निर्धारित कर सकती हैं और भतीजागण संगठित होकर उत्तम भूमि और आवासों में प्रविष्ट होकर उन्हें अधिकार में करने का नैतिक दायित्व निभा सकते हैं। इसमें अच्छा पड़ता खाता है।

अब आपने बीस हजार भेंट किये और फतेहपुरी थाने में नियुक्ति कराई। इसके बाद यदि आप सिर्फ 'गाड़ी खड़ी न करें' वाली जगह पर खड़े स्कूटरों का चालान करते रहे तो थानेदारी पड़ता कैसे खाएगी! लाभप्रद थानेदारी तब तक नहीं हो सकती जब तक किसी डकैत या तस्कर से मित्रता न हो जाए।

पड़ता के इस अद्‌भुत सिद्धान्त का विस्तार कला और साहित्य तक हुआ है। साहित्य लिखने-भर से न साहित्य पड़ता खाता है न साहित्यकार। बल्कि गालियाँ खाने की नौबत आ जाती है।

चतुर व्यक्ति साहित्यकार होने से पहले अफसर या मन्त्री होता है। इससे साहित्य का तुरन्त कल्याण होता है। किसी जमाने में निराला जैसे लोग होते थे। वे इतने हौलू थे कि मन्त्री क्या मन्त्री के निजी सचिव भी नहीं बने और कविता लिखने लग गए। नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए था। निराला बहुत पिनपिनाए। 'घण्टों घाटी हो गईं' वाली शैली में रोने वाले पंसारी की तरह उन्होंने लिखा—

पर संपादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति में दो उत्तर।

भाई संपादक वापस तो करेगा ही। टिकट लगा लिफाफा निराला से नहीं माँगा यही क्या कम है। निराला बोले—

अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम!
कर नहीं सका पोषण उत्तम।

सो तो होना ही था। विश्वनाथ प्रताप सिंह को देखिए। साहित्य जगत् को रातों-रात यह बोध हो गया कि साहित्य का सूर्योदय हो गया। वे जब तक मुख्यमन्त्री रहे, चर्चा दो की ही हुई—फूलनदेवी की बन्दूक की और विश्वनाथ प्रताप सिंह की कविता की।

अटलबिहारी बाजपेयी को हम भारतमाता का शुद्ध सेवक मानते थे। हम समझते थे कि वे सिर्फ आपात्‌काल पर भाषण दे सकते हैं। वे विदेश-मन्त्री हुए तो मनोहरश्याम जोशी की खोजी साहित्यकारिता जागी और मालूम हुआ जाने कब अटलबिहारीजी ने कविताएँ भी लिख डालीं। वे खूब छपीं। आप ध्यान दें कि साहित्य में कविता की वापसी का नारा उसी बीच क्यों दिया गया?

आपने पिछले दिनों देखा होगा—साहित्य में लम्बी बातचीत के सिलसिले चल गए हैं। आखिर क्यों? पहले जमाने में रामचन्द्र शुक्ल जैसे कलम घिसने वाले लोग बरसों मगजमारी करके किताब लिखते थे, फिर उसे

थैले में डालकर प्रकाशक के चक्कर काटते थे। आलोचना पड़ता नहीं खाती। इसमें पकड़े जाने का डर भी होता है। आप किसी भक्त को पकड़िए और उसके टेपरिकार्डर से थूथन भिड़ाकर बोलना शुरू कर दीजिए। बोलते जाइए। जहाँ टेप खत्म हो जाए आप भी रुक जाइए। इसमें मेहनत कम पड़ती है और लेखन के सारे सुख उपलब्ध होते हैं। मौका आये तो आप बड़ी मासूमियत से खैनी खाते हुए (यह जिक्र उनका नहीं है भाई) कह सकते हैं—मैंने जो कहा उसका यह मतलब नहीं था।

यह पड़ता खाएगा।

चुनाव चक्र और एकता

चुनाव की सुहानी बयार बहने लगी है। मौसम बदलता है तो खाल पर नचुनी होने लगती है यानी खारिश-सी होती है। खारिश का मजा खुद खारिश है। खारिश की दवा कर लो तो सारा मजा जाता रहता है। चुनाव में यही होता है। खारिश होती है और विरोधी दल बगलें खुजाते हैं। कभी-कभी एक-दूसरे को भी खुजाते हैं। खुजाने वाला अगर जगजीवन राम हुआ तो वह अपनी खाज न तो खुद खुजाता है न दूसरे को खुजाने देता है। किसी वीराने में पेड़ के तने पर पीठ रगड़ता है। अगर अटलबिहारी बाजपेयी हुआ तो अपनी खारिश पर तो दवा चुपड़ता है और दूसरों की खाज पर नाखून। हेमवतीनन्दन बहुगुणा खुजाते अपनी बगल हैं और चाहते हैं मजा दूसरे को आए।

राजनारायण विचित्र चीज हैं। वे तो आपकी पीठ पर खजोहण रगड़ देंगे फिर घी की कटोरी के लिए भाग-दौड़ शुरू कर देंगे।

चौधरी चरणसिंह को खुद खुजली कभी नहीं होती। वे खुद दूसरों को हो जाते हैं। इसके बाद वे चाहते हैं कि लोग खुजाएँ उनकी ही पीठ, अपनी पीठ भगवान् भरोसे छोड़ दें।

तो भाई, चुनाव तो आ गया और चुनाव की खारिश भी जोरों पर है। अब सवाल यह है कि अगर विरोधी दलों में एका न हुआ तो इन्दिरा गांधी चुनाव जीत जाएँगी। और वे चुनाव जीत गईं तो खाज का सारा सूखा मिट्टी हो जाएगा।

हमें उम्मीद थी कि एका अब हो ही जाएगा। राजनारायण के सुधर जाने के बाद इसमें कसर ही क्या रह गई थी? मगर लगता है बिगड़े हुए अकेले राजनारायण ही नहीं थे। विरोधी दल का हर नेता एक किस्म का राजनारायण था।